1 वासुदेवशरण अग्रवाल

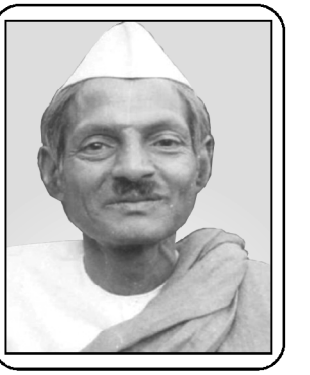

लेखक : एक संक्षिप्त परिचय

- **जन्म**—7 अगस्त, 1904 ई०।
- **जन्म-स्थान**—मेरठ (उ० प्र०)।
- **उपाधि**—पी-एच० डी०, डी० लिट्०।
- **भाषा :** विषयानुकूल, प्रौढ़ और परिमार्जित खड़ी बोली।
- **शैली :** विचारात्मक, गवेषणात्मक, व्याख्यात्मक।
- **प्रमुख रचनाएँ**—पृथिवीपुत्र, भारत की एकता, कल्पवृक्ष, माताभूमि, वाग्धारा।
- **मृत्यु**—27 जुलाई 1967 ई०।
- **साहित्य में स्थान :** निबन्धकार, टीकाकार और साहित्यिक ग्रंथों के कुशल संपादक के रूप में ख्याति।

वासुदेवशरण अग्रवाल का जन्म 7 अगस्त, 1904 ई० में मेरठ जनपद के खेड़ा ग्राम में हुआ था। इनके माता-पिता लखनऊ में रहते थे, अतः इनका बचपन लखनऊ में बीता। सन् 1929 ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय से इन्होंने एम० ए० किया। तदनन्तर मथुरा के पुरातत्त्व संग्रहालय के अध्यक्ष पद पर रहे। सन् 1941 ई० में इन्होंने पी-एच० डी० तथा 1946 ई० में डी० लिट्० की उपाधियाँ प्राप्त कीं। इन्होंने 'पाणिनिकालीन भारत' विषय पर शोध किया। सन् 1946 ई० से 1951 ई० तक सेन्ट्रल एशियन एण्टिक्विटीज म्यूजियम के सुपरिण्टेण्डेण्ट और भारतीय पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष पद का कार्य बड़ी प्रतिष्ठा और सफलतापूर्वक किया। सन् 1951 ई० में ये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कालेज ऑफ इण्डोलॉजी (भारती महाविद्यालय) में प्रोफेसर नियुक्त हुए। सन् 1952 ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय में राधाकुमुद मुखर्जी व्याख्यान-निधि की ओर से व्याख्याता नियुक्त हुए थे। व्याख्यान का विषय 'पाणिनि' था। अग्रवाल जी भारतीय मुद्रा परिषद् (नागपुर), भारतीय संग्रहालय परिषद् (पटना) तथा आल इण्डिया ओरियण्टल कांग्रेस, फाइन आर्ट सेक्शन बम्बई (मुम्बई) आदि संस्थाओं के सभापति पद पर भी रह चुके हैं। अग्रवाल जी ने पालि, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओं तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति और पुरातत्त्व का गहन अध्ययन किया था। सन् 1967 ई० में हिन्दी के इस साहित्यकार का निधन हो गया।

भारतीय संस्कृति, पुरातत्त्व और प्राचीन इतिहास के ज्ञाता होने के कारण डॉ० अग्रवाल के मन में भारतीय संस्कृति को वैज्ञानिक और अनुसंधान की दृष्टि से प्रकाश में लाने की इच्छा थी, अतः इन्होंने उत्कृष्ट कोटि के अनुसंधानात्मक निबंधों की रचना की थी। निबंध के अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत, पालि, प्राकृत के अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया। भारतीय साहित्य और संस्कृति के गम्भीर अध्येता के रूप में इनका नाम देश के विद्वानों में अग्रणी है।

1. **कल्पवृक्ष,** 2. **पृथिवीपुत्र,** 3. **भारत की एकता,** 4. **माताभूमि** इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। इन्होंने वैदिक साहित्य, दर्शन, पुराण और महाभारत पर अनेक गवेषणात्मक लेख लिखे हैं। जायसी कृत 'पद्मावत' की सजीवनी व्याख्या और बाणभट्ट के 'हर्षचरित' का सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत करके इन्होंने हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित किया है। इसके अतिरिक्त इनकी लिखी

और सम्पादित पुस्तकें हैं—**उरुज्योति, कला और संस्कृति, भारतसावित्री, कादम्बरी, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ** आदि।

इनकी भाषा विषयानुकूल, प्रौढ़ तथा परिमार्जित है। इन्होंने मुख्यतः इतिहास, पुराण, धर्म एवं संस्कृति के क्षेत्रों से शब्द-चयन किया है और शब्दों को उनके मूल अर्थ में प्रयुक्त किया है। संस्कृतनिष्ठता के कारण कहीं-कहीं वह दुरूह हो गयी है। इनकी भाषा में देशज शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। इनकी भाषा में उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों, मुहावरों, कहावतों का अभाव दिखायी पड़ता है। इनकी मौलिक रचनाओं में संस्कृत की सामासिक शैली की प्रमुखता है तथा भाष्यों में व्यास शैली की। इनकी शैली पर इनके गंभीर व्यक्तित्त्व की गहरी छाप है। ये एक गंभीर अध्येता और चिंतक रहे हैं। इनके व्यक्तित्त्व का निर्माण एक सचेत शोधकर्ता, विवेकशील विचारक तथा एक सहृदय कवि के योग से हुआ है। इसलिए इनके निबंधों में ज्ञान का आलोक, चिन्तन की गहराई और भावोद्रेक की तरलता एक साथ लक्षित है। सामान्यतः इनके निबंध विचारात्मक शैली में ही लिखे गये हैं। अपने निबंधों में निर्णयों की पुष्टि के लिए उद्धरणों को प्रस्तुत करना इनका सहज स्वभाव रहा है। इसलिए उद्धरण-बहुलता इनकी निबंध-शैली की एक विशेषता बन गयी है।

इनके निबंधों में भारतीय संस्कृति का उदात्त रूप व्यक्त हुआ है। इनके कथन प्रामाणिक हैं और इनकी शैली में आत्मविश्वास की झलक मिलती है। इनकी शैली का प्रधान रूप विवेचनात्मक है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में ये अपनी मौलिकता, विचारशीलता और विद्वत्ता के लिए चिरस्मरणीय रहेंगे।

प्रस्तुत निबंध **'राष्ट्र का स्वरूप'** इनके 'पृथिवीपुत्र' नामक निबंध-संग्रह से लिया गया है। इस निबंध में लेखक ने यह बताया है कि राष्ट्र का स्वरूप तीन तत्त्वों से मिलकर बनता है। ये तीन तत्त्व हैं—पृथिवी, जन और संस्कृति। पृथिवी को माता के रूप में मानना और स्वयं को पृथिवी का पुत्र मानना राष्ट्रीयता की भावना के उदय के लिए आवश्यक है। राष्ट्र के समग्र रूप में भूमि और जन का दृढ़ सम्बन्ध होना चाहिए। इसके साथ-साथ संस्कृति के विषय में भी लेखक ने मार्मिक विचार प्रकट किये हैं। लेखक के अनुसार सहृदय व्यक्ति प्रत्येक संस्कृति के आनन्द पक्ष को स्वीकार करता है और उससे आनन्दित हो उठता है।

राष्ट्र का स्वरूप

भूमि

भूमि, भूमि पर बसनेवाला जन और जन की संस्कृति, इन तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।

भूमि का निर्माण देवों ने किया है, वह अनंत काल से है। उसके भौतिक रूप, सौन्दर्य और समृद्धि के प्रति सचेत होना हमारा आवश्यक कर्त्तव्य है। भूमि के पार्थिव स्वरूप के प्रति हम जितने अधिक जागरित होंगे उतनी ही हमारी राष्ट्रीयता बलवती हो सकेगी। यह पृथिवी सच्चे अर्थों में समस्त राष्ट्रीय विचारधाराओं की जननी है। जो राष्ट्रीयता पृथिवी के साथ नहीं जुड़ी वह निर्मूल होती है। राष्ट्रीयता की जड़ें पृथिवी में जितनी गहरी होंगी उतना ही राष्ट्रीय भावों का अंकुर पल्लवित होगा। इसलिए पृथिवी के भौतिक स्वरूप की आद्योपांत जानकारी प्राप्त करना, उसकी सुन्दरता, उपयोगिता और महिमा को पहचानना आवश्यक धर्म है।

इस कर्त्तव्य की पूर्ति सैकड़ों-हजारों प्रकार से होनी चाहिए। पृथिवी से जिस वस्तु का संबंध है, चाहे वह छोटी हो या बड़ी, उसका कुशल-प्रश्न पूछने के लिए हमें कमर कसनी चाहिए। पृथिवी का सांगोपांग अध्ययन जागरणशील राष्ट्र के लिए बहुत ही आनंदप्रद कर्त्तव्य माना जाता है। गाँवों और नगरों में सैकड़ों केन्द्रों से इस प्रकार के अध्ययन का सूत्रपात होना आवश्यक है।

उदाहरण के लिए, पृथिवी की उपजाऊ शक्ति को बढ़ानेवाले मेघ जो प्रतिवर्ष समय पर आकर अपने अमृत जल से इसे सींचते हैं; हमारे अध्ययन की परिधि के अंतर्गत आने चाहिए। उन मेघजलों से परिवर्द्धित प्रत्येक तृणलता और वनस्पति का सूक्ष्म परिचय प्राप्त करना ही हमारा कर्त्तव्य है।

इस प्रकार जब चारों ओर से हमारे ज्ञान के कपाट खुलेंगे, तब सैकड़ों वर्षों से शून्य और अंधकार से भरे हुए जीवन के क्षेत्रों में नया उजाला दिखायी देगा।

धरती माता की कोख में जो अमूल्य निधियाँ भरी हैं जिनके कारण वह वसुन्धरा कहलाती है उससे कौन परिचित न होना चाहेगा? लाखों-करोड़ों वर्षों से अनेक प्रकार की धातुओं को पृथिवी के गर्भ में पोषण मिला है। दिन-रात बहनेवाली नदियों ने पहाड़ों को पीस-पीसकर अगणित प्रकार की मिट्टियों से पृथिवी की देह को सजाया है। हमारे भावी आर्थिक अभ्युदय के लिए इन सबकी जाँच-पड़ताल अत्यन्त आवश्यक है। पृथिवी की गोद में जन्म लेनेवाले जड़-पत्थर कुशल शिल्पियों से सँवारे जाने पर अत्यन्त सौन्दर्य के प्रतीक बन जाते हैं। नाना भाँति के अनगढ़ नग विन्ध्य की नदियों के प्रवाह में सूर्य की धूप से चिलकते रहते हैं, उनको जब चतुर कारीगर पहलदार कटाव पर लाते हैं तब उनके प्रत्येक घाट से नयी शोभा और सुन्दरता फूट पड़ती है, वे अनमोल हो जाते हैं। देश के नर-नारियों के रूप-मंडन और सौन्दर्य-प्रसाधन में इन छोटे पत्थरों का भी सदा से कितना भाग रहा है; अतएव हमें उनका ज्ञान होना भी आवश्यक है।

पृथिवी और आकाश के अंतराल में जो कुछ सामग्री भरी है, पृथिवी के चारों ओर फैले हुए गंभीर सागर में जो जलचर एवं रत्नों की राशियाँ हैं, उन सब के प्रति चेतना और स्वागत के नये भाव राष्ट्र में फैलने चाहिए। राष्ट्र के नवयुवकों के हृदय में उन सबके प्रति जिज्ञासा की नयी किरणें जब तक नहीं फूटतीं तब तक हम सोए हुए के समान हैं।

विज्ञान और उद्यम दोनों को मिलाकर राष्ट्र के भौतिक स्वरूप का एक नया ठाट खड़ा करना है। यह कार्य प्रसन्नता, उत्साह और अथक परिश्रम के द्वारा नित्य आगे बढ़ाना चाहिए। हमारा यह ध्येय हो कि राष्ट्र में जितने हाथ हैं उनमें से कोई भी इस कार्य में भाग लिये बिना रीता न रहे। तभी मातृभूमि की पुष्कल समृद्धि और समग्र रूपमंडन प्राप्त किया जा सकता है।

जन

मातृभूमि पर निवास करनेवाले मनुष्य राष्ट्र का दूसरा अंग हैं। पृथिवी हो और मनुष्य न हों, तो राष्ट्र की कल्पना असंभव है। पृथिवी और जन दोनों के सम्मिलन से ही राष्ट्र का स्वरूप संपादित होता है। जन के कारण ही पृथिवी मातृभूमि की संज्ञा प्राप्त करती है। पृथिवी माता है और जन सच्चे अर्थों में पृथिवी का पुत्र है—

(माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।)
–भूमि माता है, मैं उसका पुत्र हूँ।

जन के हृदय में इस सूत्र का अनुभव ही राष्ट्रीयता की कुंजी है। इसी भावना से राष्ट्र-निर्माण के अंकुर उत्पन्न होते हैं।

यह भाव जब सशक्त रूप में जागता है तब राष्ट्र-निर्माण के स्वर वायुमंडल में भरने लगते हैं। इस भाव के द्वारा ही मनुष्य पृथिवी के साथ अपने सच्चे संबंध को प्राप्त करते हैं। जहाँ यह भाव नहीं है वहाँ जन और भूमि का संबंध अचेतन और जड़ बना रहता है। जिस समय भी जन का हृदय भूमि के साथ माता और पुत्र के संबंध को पहचानता है उसी क्षण आनंद और श्रद्धा से भरा हुआ उसका प्रणाम-भाव मातृभूमि के लिए इस प्रकार प्रकट होता है—

(नमो मात्रे पृथिव्यै। नमो मात्रे पृथिव्यै।)
माता पृथिवी को प्रणाम है। माता पृथिवी को प्रणाम है।

यह प्रणाम-भाव ही भूमि और जन का दृढ़ बन्धन है। इसी दृढ़ भित्ति पर राष्ट्र का भवन तैयार किया जाता है। इसी दृढ़ चट्टान पर राष्ट्र का चिर जीवन आश्रित रहता है। इसी मर्यादा को मानकर राष्ट्र के प्रति मनुष्यों के कर्त्तव्य और अधिकारों का उदय होता है। जो जन पृथिवी के साथ माता और पुत्र के संबंध को स्वीकार करता है, उसे ही पृथिवी के वरदानों में भाग पाने का अधिकार है। माता के प्रति अनुराग और सेवाभाव पुत्र का स्वाभाविक कर्त्तव्य है। वह एक निष्कारण धर्म है। स्वार्थ के लिए पुत्र का माता के प्रति प्रेम, पुत्र के अधःपतन को सूचित करता है। जो जन मातृभूमि के साथ अपना संबंध जोड़ना चाहता है उसे अपने कर्त्तव्यों के प्रति पहले ध्यान देना चाहिए।

माता अपने सब पुत्रों को समान भाव से चाहती है। इसी प्रकार पृथिवी पर बसनेवाले जन बराबर हैं। उनमें ऊँच और नीच का भाव नहीं है। जो मातृभूमि के उदय के साथ जुड़ा हुआ है वह समान अधिकार का भागी है। पृथिवी पर निवास करनेवाले जनों का विस्तार अनंत है—नगर और जनपद, पुर और गाँव, जंगल और पर्वत नाना प्रकार के जनों से भरे हुए हैं। ये जन अनेक प्रकार की भाषाएँ बोलनेवाले और अनेक धर्मों के माननेवाले हैं, फिर भी ये मातृभूमि के पुत्र हैं और इस कारण उनका सौहार्द भाव अखण्ड है। सभ्यता और रहन-सहन की दृष्टि से जन एक-दूसरे से आगे-पीछे हो सकते हैं किन्तु इस कारण से मातृभूमि के साथ उनका जो संबंध है उसमें कोई भेदभाव उत्पन्न नहीं हो सकता। पृथिवी के विशाल प्रांगण में सब जातियों के लिए समान क्षेत्र है। समन्वय के मार्ग से भरपूर प्रगति और उन्नति करने का सबको एक जैसा अधिकार है। किसी जन को पीछे छोड़कर राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता। अतएव राष्ट्र के प्रत्येक अंग की सुध हमें लेनी होगी। राष्ट्र के शरीर के एक भाग में यदि अंधकार और निर्बलता का निवास है तो समग्र राष्ट्र का स्वास्थ्य उतने अंश में असमर्थ रहेगा। इस प्रकार समग्र राष्ट्र को जागरण और प्रगति की एक जैसी उदार भावना से संचालित होना चाहिए।

जन का प्रवाह अनंत होता है। सहस्त्रों वर्षों से भूमि के साथ राष्ट्रीय जन ने तादात्म्य प्राप्त किया है। जब तक सूर्य की रश्मियाँ नित्य प्रातःकाल भुवन को अमृत से भर देती हैं तब तक राष्ट्रीय जन का जीवन भी अमर है। इतिहास के अनेक उतार-चढ़ाव पार करने के बाद भी राष्ट्र-निवासी जन नयी उठती लहरों से आगे बढ़ने के लिए अजर-अमर हैं। जन का संततवाही जीवन नदी के प्रवाह की तरह है, जिसमें कर्म और श्रम के द्वारा उत्थान के अनेक घाटों का निर्माण करना होता है।

संस्कृति

राष्ट्र का तीसरा अंग जन की संस्कृति है। मनुष्यों ने युग-युगों में जिस सभ्यता का निर्माण किया है वही उसके जीवन की श्वास-प्रश्वास है। बिना संस्कृति के जन की कल्पना कबंधमात्र है; संस्कृति ही जन का मस्तिष्क है। संस्कृति के विकास और अभ्युदय के द्वारा ही राष्ट्र की वृद्धि संभव है। राष्ट्र के समग्र रूप में भूमि और जन के साथ-साथ जन की संस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि भूमि और जन अपनी संस्कृति से विरहित कर दिये जायँ तो राष्ट्र का लोप समझना चाहिए। जीवन के विटप का पुष्प संस्कृति है। संस्कृति के सौन्दर्य और सौरभ में ही राष्ट्रीय जन के जीवन का सौन्दर्य और यश अंतर्निहित है। ज्ञान और कर्म दोनों के पारस्परिक प्रकाश की संज्ञा संस्कृति है। भूमि पर बसनेवाले जन ने ज्ञान के क्षेत्र में जो सोचा है और कर्म के क्षेत्र में जो रचा है, दोनों के रूप में हमें राष्ट्रीय संस्कृति के दर्शन मिलते हैं। जीवन के विकास की युक्ति ही संस्कृति के रूप में प्रकट होती है। प्रत्येक जाति अपनी-अपनी विशेषताओं के साथ इस युक्ति को निश्चित करती है और उससे प्रेरित संस्कृति का विकास करती है। इस दृष्टि से प्रत्येक जन की अपनी-अपनी भावना के अनुसार पृथक्-पृथक् संस्कृतियाँ राष्ट्र में विकसित होती हैं, परन्तु उन सबका मूल आधार पारस्परिक सहिष्णुता और समन्वय पर निर्भर है।

जंगल में जिस प्रकार अनेक लता, वृक्ष और वनस्पति अपने अदम्य भाव से उठते हुए पारस्परिक सम्मिलन से अविरोधी स्थिति प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रीय जन अपनी संस्कृतियों के द्वारा एक-दूसरे के साथ मिलकर राष्ट्र में रहते हैं। जिस प्रकार जल के अनेक प्रवाह नदियों के रूप में मिलकर समुद्र में एकरूपता प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रीय जीवन की अनेक विधियाँ

राष्ट्रीय संस्कृति में समन्वय प्राप्त करती हैं। समन्वययुक्त जीवन ही राष्ट्र का सुखदायी रूप है।

साहित्य, कला, नृत्य, गीत, आमोद-प्रमोद अनेक रूपों में राष्ट्रीय जन अपने-अपने मानसिक भावों को प्रकट करते हैं। आत्मा का जो विश्वव्यापी आनंद-भाव है वह इन विविध रूपों में साकार होता है। यद्यपि बाह्य रूप की दृष्टि से संस्कृति के ये बाहरी लक्षण अनेक दिखायी पड़ते हैं, किन्तु आंतरिक आनंद की दृष्टि से उनमें एकसूत्रता है। जो व्यक्ति सहृदय है, वह प्रत्येक संस्कृति के आनंद-पक्ष को स्वीकार करता है और उससे आनंदित होता है। इस प्रकार की उदार भावना ही विविध जनों से बने हुए राष्ट्र के लिए स्वास्थ्यकर है।

गाँवों और जंगलों में स्वच्छंद जन्म लेनेवाले लोकगीतों में, तारों के नीचे विकसित लोक-कथाओं में संस्कृति का अमित भंडार भरा हुआ है, जहाँ से आनंद की भरपूर मात्रा प्राप्त हो सकती है। राष्ट्रीय संस्कृति के परिचयकाल में उन सबका स्वागत करने की आवश्यकता है।

पूर्वजों ने चरित्र और धर्म-विज्ञान, साहित्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र में जो कुछ भी पराक्रम किया है उस सारे विस्तार को हम गौरव के साथ धारण करते हैं और उसके तेज को अपने भावी जीवन में साक्षात् देखना चाहते हैं। यही राष्ट्र संवर्द्धन का स्वाभाविक प्रकार है। जहाँ अतीत वर्तमान के लिए भाररूप नहीं है, जहाँ भूत वर्तमान को जकड़ नहीं रखना चाहता वरन् अपने वरदान से पुष्टि करके उसे आगे बढ़ाना चाहता है, उस राष्ट्र का हम स्वागत करते हैं। ***—वासुदेवशरण अग्रवाल***

शब्दार्थ

परिधि = सीमा। **वसुन्धरा** = वसुओं अर्थात् अमूल्य निधियों को धारण करनेवाली, पृथिवी। **अभ्युदय** = उन्नति। **नग** = रत्न। **अन्तराल** = बीच। **पुष्कल** = प्रचुर या अधिक। **निष्कारण धर्म** = ऐसा धर्म जिसमें स्वार्थ की भावना नहीं रहती। **समन्वय** = भेदों की एकता। **तादात्म्य** = एकत्व समर्पण। **संततवाही** = सदा प्रवाहित, स्थायी। **कबन्ध** = सिर रहित धड़। **विरहित** = विहीन। **अन्तर्निहित** = भीतर छिपा हुआ। **आद्योपान्त** = आरंभ से अंत तक। **कोख** = गर्भ। **रूपमंडन** = अलंकृत स्वरूप।

अभ्यास प्रश्न

गद्यांश पर आधारित *प्रश्न*

1. निम्नलिखित गद्यांशों पर आधारित प्रश्नों के उत्तर दीजिए—

(क) भूमि, भूमि पर बसने वाला जन और जन की संस्कृति, इन तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है। भूमि का निर्माण देवों ने किया है, वह अनंत काल से है। उसके भौतिक रूप, सौन्दर्य और समृद्धि के प्रति सचेत होना हमारा आवश्यक कर्त्तव्य है। भूमि के पार्थिव स्वरूप के प्रति हम जितने अधिक जागरित होंगे उतनी ही हमारी राष्ट्रीयता बलवती हो सकेगी। यह पृथिवी सच्चे अर्थों में समस्त राष्ट्रीय विचारधाराओं की जननी है। जो राष्ट्रीयता पृथिवी के साथ नहीं जुड़ी वह निर्मूल होती है। राष्ट्रीयता की जड़ें पृथिवी में जितनी गहरी होंगी उतना ही राष्ट्रीय भावों का अंकुर पल्लवित होगा। इसलिए पृथिवी के भौतिक स्वरूप की आद्योपांत जानकारी प्राप्त करना, उसकी सुन्दरता, उपयोगिता और महिमा को पहचानना आवश्यक धर्म है।

[2019 CW, CY, 20 ZB]

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश के शीर्षक एवं लेखक का नाम लिखिए।
(ii) राष्ट्रभूमि के प्रति हमारा आवश्यक कर्त्तव्य क्या है?
(iii) किस प्रकार की राष्ट्रीयता को लेखक ने निर्मूल कहा है?
(iv) यह पृथ्वी सच्चे अर्थों में क्या है?
(v) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(vi) भूमि का निर्माण किसने किया है, और कब से है?
(vii) भूमि के पार्थिव स्वरूप के प्रति जागरूक रहने का परिणाम क्या होगा?
(viii) किसके सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है?
(ix) यह पृथ्वी सच्चे अर्थों में किसकी जननी है?
(x) हमारी राष्ट्रीयता कैसे बलवती हो सकेगी?

(ख) मातृभूमि पर निवास करनेवाले मनुष्य राष्ट्र का दूसरा अंग हैं। पृथिवी हो और मनुष्य न हों, तो राष्ट्र की कल्पना असंभव है। पृथिवी और जन दोनों के सम्मिलन से ही राष्ट्र का स्वरूप संपादित होता है। जन के कारण ही पृथिवी मातृभूमि की संज्ञा प्राप्त करती है। पृथिवी माता है और जन सच्चे अर्थों में पृथिवी का पुत्र है—

(माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।)

—भूमि माता है, मैं उसका पुत्र हूँ।

जन के हृदय में इस सूत्र का अनुभव ही राष्ट्रीयता की कुंजी है। इसी भावना से राष्ट्र-निर्माण के अंकुर उत्पन्न होते हैं।

[2019 CY]

प्रश्न– (i) पाठ का शीर्षक और लेखक का नाम लिखिए।
(ii) राष्ट्र की कल्पना कब असंभव है?
(iii) पृथ्वी और जन दोनों मिलकर क्या करते हैं?
(iv) पृथ्वी कब मातृभूमि की संज्ञा प्राप्त करती है?
(v) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(ग) जन का प्रवाह अनंत होता है। सहस्रों वर्षों से भूमि के साथ राष्ट्रीय जन ने तादात्म्य प्राप्त किया है। जब तक सूर्य की रश्मियाँ नित्य प्रातःकाल भुवन को अमृत से भर देती हैं तब तक राष्ट्रीय जन का जीवन भी अमर है। इतिहास के अनेक उतार-चढ़ाव पार करने के बाद भी राष्ट्र-निवासी जन नयी उठती लहरों से आगे बढ़ने के लिए अजर-अमर हैं। जन का संततवाही जीवन नदी के प्रवाह की तरह है, जिसमें कर्म और श्रम के द्वारा उत्थान के अनेक घाटों का निर्माण करना होता है।

[2019 CL, CQ, 20 ZH, ZL]

प्रश्न– (i) जन का प्रवाह किस तरह होता है?
(ii) पाठ का शीर्षक एवं लेखक का नाम लिखिए।
(iii) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iv) सूर्य की रश्मियों का क्या प्रभाव पड़ता है?
(v) 'घाटों का निर्माण' का आशय स्पष्ट कीजिए।
(vi) 'सततवाही' का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
(vii) राष्ट्रीय जन ने किसके साथ तादात्म्य प्राप्त किया है?
(viii) जन की सतत्वाही जीवन किस तरह है?
(ix) राष्ट्रीय जन का जीवन भी कब तक अमर है?
(x) जन का प्रवाह से क्या तात्पर्य है?
(xi) राष्ट्र निवासी जन किसके समान आगे बढ़ने के लिए अजर-अमर हैं?
(xii) उत्थान के घाटों का निर्माण कैसे होता है?
(xiii) जन-जीवन के प्रवाह को नदी की तरह क्यों कहा गया है?
(xiv) 'तादात्म्य' और 'अजर' का शब्दार्थ क्या है?

(घ) राष्ट्र का तीसरा अंग जन की संस्कृति है। मनुष्यों ने युग-युगों में जिस सभ्यता का निर्माण किया है वही उसके जीवन की श्वास-प्रश्वास है। बिना संस्कृति के जन की कल्पना कबंधमात्र है; संस्कृति ही जन का मस्तिष्क है। संस्कृति के विकास और अभ्युदय के द्वारा ही राष्ट्र की वृद्धि संभव है। राष्ट्र के समग्र रूप में भूमि और जन के साथ-साथ जन की संस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि भूमि और जन अपनी संस्कृति से विरहित कर दिये जायँ तो राष्ट्र का लोप समझना चाहिए। जीवन के विटप का पुष्प संस्कृति है। संस्कृति के सौन्दर्य और सौरभ में ही राष्ट्रीय जन के जीवन का सौन्दर्य और यश अंतर्निहित है। ज्ञान और कर्म दोनों के पारस्परिक प्रकाश की संज्ञा संस्कृति है। भूमि पर बसनेवाले जन ने ज्ञान के क्षेत्र में जो सोचा है और कर्म के क्षेत्र में जो रचा है, दोनों के रूप में हमें राष्ट्रीय संस्कृति के दर्शन मिलते हैं। जीवन के विकास की युक्ति ही संस्कृति के रूप में प्रकट होती है। प्रत्येक जाति अपनी-अपनी विशेषताओं के साथ इस युक्ति को निश्चित करती है और उससे प्रेरित संस्कृति का विकास करती है। इस दृष्टि से प्रत्येक जन की अपनी-अपनी भावना के अनुसार पृथक्-पृथक् संस्कृतियाँ राष्ट्र में विकसित होती हैं, परन्तु उन सबका मूल आधार पारस्परिक सहिष्णुता और समन्वय पर निर्भर है।

अथवा बिना संस्कृति के जन की कल्पना .... अन्तर्निहित है। **[2020 ZK]**

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश के लेखक एवं शीर्षक का नाम लिखिए।
(ii) राष्ट्र का तीसरा अंग क्या है?
(iii) राष्ट्र वृद्धि कैसे संभव है?
(iv) ज्ञान और कर्म संयुक्त प्रकाश को क्या कहा गया है?
(v) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(vi) संस्कृति का क्या तात्पर्य है?
(vii) लेखक ने क्यों कहा है कि संस्कृति के सौन्दर्य में जीवन का सौन्दर्य छिपा हुआ है?
(viii) राष्ट्रीय संस्कृति किसे कहते हैं?
(ix) किसी राष्ट्र का लोप कब हो जाता है?
(x) भूमि और जन के अतिरिक्त राष्ट्र में और क्या महत्त्वपूर्ण है?

(ङ) पृथिवी के विशाल प्रांगण में सब जातियों के लिए समान क्षेत्र है। समन्वय के मार्ग से भरपूर प्रगति और उन्नति करने का सबको एक जैसा अधिकार है। किसी जन को पीछे छोड़कर राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता। अतएव राष्ट्र के प्रत्येक अंग की सुध हमें लेनी होगी। राष्ट्र के शरीर के एक भाग में यदि अंधकार और निर्बलता का निवास है तो समग्र राष्ट्र का स्वास्थ्य उतने अंश में असमर्थ रहेगा। इस प्रकार समग्र राष्ट्र को जागरण और प्रगति की एक जैसी उदार भावना से संचालित होना चाहिए।

अथवा राष्ट्र का तीसरा अंग .... संज्ञा संस्कृति है। **[2019 CM]**

अथवा जीवन के विटप .... दर्शन मिलते हैं। **[2019 CP]**

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।
(ii) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) राष्ट्र के प्रत्येक अंग की हमें सुध क्यों लेनी होगी?
(iv) समस्त देशवासियों को एक-जैसी भावना से क्यों ओत-प्रोत होना चाहिए?
(v) इस पृथ्वी पर सबको एक समान अधिकार किस दृष्टि से प्राप्त है?

(च) जंगल में जिस प्रकार अनेक लता, वृक्ष और वनस्पति अपने अदम्य भाव से उठते हुए पारस्परिक सम्मिलन से अविरोधी स्थिति प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रीय जन अपनी संस्कृतियों के द्वारा एक-दूसरे के साथ मिलकर राष्ट्र में रहते हैं। जिस प्रकार जल के अनेक प्रवाह नदियों के रूप में मिलकर समुद्र में एकरूपता प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रीय जीवन की अनेक विधियाँ राष्ट्रीय संस्कृति में समन्वय प्राप्त करती हैं। समन्वययुक्त जीवन ही राष्ट्र का सुखदायी रूप है।

प्रश्न– (i) जंगल और राष्ट्रीय जन में क्या समानता है?
(ii) विभिन्न संस्कृतियों के मिलन की तुलना किससे की गयी है?
(iii) 'अदम्य' और 'अविरोधी' का शब्दार्थ बताइए।
(iv) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(v) उपर्युक्त पाठ का शीर्षक एवं लेखक का नाम लिखिए।

(छ) धरती माता की कोख में जो अमूल्य निधियाँ भरी हैं जिनके कारण वह वसुन्धरा कहलाती है उससे कौन परिचित न होना चाहेगा? लाखों-करोड़ों वर्षों से अनेक प्रकार की धातुओं को पृथिवी के गर्भ में पोषण मिला है। दिन-रात बहने वाली नदियों ने पहाड़ों को पीस-पीसकर अगणित प्रकार की मिट्टियों से पृथिवी की देह को सजाया है। हमारे भावी आर्थिक अभ्युदय के लिए इन सबकी जाँच-पड़ताल अत्यन्त आवश्यक है। पृथिवी की गोद में जन्म लेने वाले जड़-पत्थर कुशल शिल्पियों से सँवारे जाने पर अत्यन्त सौन्दर्य के प्रतीक बन जाते हैं। नाना भाँति के अनगढ़ नग विन्ध्य की नदियों के प्रवाह में सूर्य की धूप से चिलकते रहते हैं, उनको जब चतुर कारीगर पहलदार कटाव पर लाते हैं तब उनके प्रत्येक घाट से नई शोभा और सुन्दरता फूट पड़ती है, वे अनमोल हो जाते हैं। देश के नर-नारियों के रूप-मण्डन और सौन्दर्य-प्रसाधन में इन छोटे पत्थरों का भी सदा से कितना भाग रहा है, अतएव हमें उनका ज्ञान होना भी आवश्यक है।
[2019 CO]

अथवा धनराशि माता ..... अनमोल हो जाते हैं। **[2019 CT]**

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

अथवा उक्त गद्यांश के पाठ का शीर्षक और लेखक का नाम लिखिए।

(ii) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) धरती माँ को वसुन्धरा क्यों कहते हैं?

(iv) किसने पृथिवी की देह को सजाया है?

(v) आर्थिक विकास के लिए क्या आवश्यक है?

(vi) अमूल्य निधियाँ कहाँ भरी हैं?

(ज) साहित्य, कला, नृत्य, गीत, आमोद-प्रमोद अनेक रूपों में राष्ट्रीय जन अपने-अपने मानसिक भावों को प्रकट करते हैं। आत्मा का जो विश्वव्यापी आनन्द भाव है वह इन विविध रूपों में साकार होता है। यद्यपि बाह्य रूप की दृष्टि से संस्कृति के ये बाहरी लक्षण अनेक दिखाई पड़ते हैं, किन्तु आन्तरिक आनन्द की दृष्टि से उनमें एकसूत्रता है। जो व्यक्ति सहृदय है, वह प्रत्येक संस्कृति के आनंद पक्ष को स्वीकार करता है और उससे आनन्दित होता है। इस प्रकार की उदार भावना ही विविध जनों से बने हुए राष्ट्र के लिए स्वास्थ्यकर है। **[2020 ZJ]**

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) सहृदय व्यक्ति किसे स्वीकार करके प्रसन्नचित्त होता है?

(iv) राष्ट्रीय जन अपने-अपने मानसिक भावों को किन-किन रूपों में प्रकट करते हैं?

(v) राष्ट्रीय जन अपने मनोभावों को किन-किन रूपों में प्रकट करते हैं?

(vi) प्रत्येक संस्कृति के आनन्द पक्ष को कौन स्वीकार करता है?

(vii) विश्वव्यापी और आंतरिक आनन्द का क्या अर्थ है?

(झ) यह प्रणाम-भाव ही भूमि और जन का दृढ़ बन्धन है। इसी दृढ़ भित्ति पर राष्ट्र का भवन तैयार किया जाता है। इसी चट्टान पर राष्ट्र का चिर जीवन आश्रित रहता है। इसी मर्यादा को मानकर राष्ट्र के प्रति मनुष्यों के कर्त्तव्य और अधिकारों का उदय होता है। जो जन पृथिवी के साथ माता और पुत्र के सम्बन्ध को स्वीकार करता है, उसे ही पृथिवी के वरदानों में भाग पाने का अधिकार है। माता के प्रति अनुराग और सेवाभाव पुत्र का स्वाभाविक कर्त्तव्य है। वह एक निष्कारण धर्म है। **[2020 DG]**

(i) उपर्युक्त गद्यांश के पाठ का शीर्षक और लेखक का नाम लिखिए।

(ii) किस दृढ़ भित्ति पर राष्ट्र का भवन तैयार किया जाता है?

(iii) किस मर्यादा को मानकर राष्ट्र के प्रति मनुष्यों के कर्त्तव्य और अधिकारों का उदय होता है?

(iv) किसे पृथ्वी के वरदानों में भाग पाने का अधिकार है?

(v) पुत्र का स्वाभाविक कर्त्तव्य क्या है?

(ञ) माता अपने सब पुत्रों को समान भाव से चाहती है। इसी प्रकार पृथ्वी पर बसने वाले जन बराबर हैं। उनमें ऊँच और नीच का भाव नहीं है। जो मातृभूमि के उदय के साथ जुड़ा हुआ है वह समान अधिकार का भागी है। पृथिवी पर निवास करनेवाले जनों का विस्तार अनंत है–नगर और जनपद, पुर और गाँव, जंगल और पर्वत नाना प्रकार के जनों से भरे हुए हैं। ये जन अनेक प्रकार की भाषाएँ बोलनेवाले और अनेक धर्मों के माननेवाले हैं, फिर भी ये मातृभूमि के पुत्र हैं और इस कारण उनका सौहार्द्र भाव अखण्ड है। सभ्यता और रहन-सहन की दृष्टि से जन एक-दूसरे से आगे-पीछे हो सकते हैं किन्तु इस कारण से मातृभूमि के साथ उनका जो सम्बन्ध है उसमें कोई भेदभाव उत्पन्न नहीं हो सकता। पृथिवी के विशाल प्रांगण में सब जातियों के लिए समान क्षेत्र है। समन्वय के मार्ग से भरपूर प्रगति और उन्नति करने का सबको एक जैसा अधिकार है। किसी जन को पीछे छोड़कर राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता। अतएव राष्ट्र के प्रत्येक अंग की सुध हमें लेनी होगी। **[2020 ZI, ZM]**

(i) माता अपने सब पुत्रों को किस भाव से चाहती है?

(ii) राष्ट्र के प्रत्येक अंग की सुध हमें क्यों लेनी होगी?

(iii) 'सौहार्द्र' और 'प्रांगण' शब्द का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

(iv) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(v) पाठ का शीर्षक और लेखक का नाम लिखिए।
(vi) पुत्र को समान भाव से कौन रखती है?
(vii) समान अधिकार का भागी कौन है?
(viii) पृथ्वी पर किसका विस्तार अनन्त है?
(ix) 'अनन्त' और 'जनपद' शब्द का अर्थ लिखिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. राष्ट्र का स्वरूप किस प्रकार निर्मित होता है? राष्ट्र को निर्मित करनेवाले तत्त्वों का वर्णन कीजिए।
[2016 SC, 17 MC, MD, MF, MG, 19 CN, CP, CQ, 20ZA, ZB, ZF, ZJ, ZK, ZL, ZN]
2. वासुदेवशरण अग्रवाल के जीवन-परिचय एवं कृतियों का उल्लेख कीजिए।
3. वासुदेवशरण अग्रवाल का साहित्यिक परिचय दीजिए।
4. वासुदेवशरण अग्रवाल की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए। **[2017 MC, 19 CM]**
5. वासुदेवशरण अग्रवाल की संक्षिप्त जीवनी का उल्लेख करते हुए उनका साहित्यिक परिचय दीजिए। **[2017 MA]**
6. वासुदेवशरण अग्रवाल का जीवन-परिचय व रचनाएँ लिखकर उनकी भाषा-शैली की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
7. 'राष्ट्र का स्वरूप' पाठ का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
8. निम्नांकित सूक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए—
(क) भूमि माता है, मैं उसका पुत्र हूँ।
(ख) संस्कृति ही जन का मस्तिष्क है।
अथवा बिना संस्कृति के जन की कल्पना कबन्ध मात्र है, संस्कृति ही जन का मस्तिष्क है।
(ग) जीवन के विटप का पुष्प संस्कृति है।
(घ) यह प्रणाम भाव ही भूमि और जन का दृढ़ बन्धन है।
(ङ) जन का प्रवाह अनन्त होता है।
(च) राष्ट्रीयता की जड़ें पृथ्वी में जितनी गहरी होंगी, उतना ही राष्ट्रीय भावों का अंकुर पल्लवित होगा।
(छ) जो राष्ट्रीयता पृथ्वी के साथ नहीं जुड़ी वह निर्मूल होती है।
(ज) ज्ञान और कर्म दोनों के पारस्परिक प्रकाश की संज्ञा संस्कृति है।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वसुन्धरा का क्या आशय है? स्पष्ट कीजिए।
2. "भूमि माता है, मैं उसका पुत्र हूँ।" पठित पाठ के आधार पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
अथवा "भूमि माता है और मैं इसका पुत्र हूँ।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
3. भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ बताइए।
4. लेखक ने संस्कृति को जीवन-विटप का पुष्प क्यों कहा है?
5. प्रस्तुत पाठ के अभिप्रेत उद्देश्य का उल्लेख एक संक्षिप्त अनुच्छेद में कीजिए।
6. राष्ट्र के स्वरूप निर्माण में जन के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
7. राष्ट्र का स्वरूप किस प्रकार निश्चित होता है? राष्ट्र को निर्मित करने वाले तत्त्वों का वर्णन कीजिए।
अथवा राष्ट्र को निर्मित करने वाले तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।
8. लेखक की दृष्टि में एक आदर्श राष्ट्र का स्वरूप क्या है?